

## भारतीय अर्थव्यवस्था का अनुरूप



विश्व के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री टोयनबी का कहना था कि जिस देश की अर्थव्यवस्था गुलाम हो जाती है, उस देश की राजनीति को गुलाम बनने में देर नहीं लगती। प्रस्तुत लेख भाई राजीव दीक्षित जी के एक भाषण का लिखित स्वरूप है जिसमें मुख्य बिंदुओं की संक्षेप में चर्चा की गई है। आप इस व्याख्यान को श्रद्धेय भाई राजीव जी के श्रीमुख से नीचे दिए गए लिंक पर भी सुन सकते हैं।

ऑडियो लिंक: [https://docs.google.com/file/d/0B8n\\_36gK-KF4MUNWZnZ1emplRVk/edit?usp=sharing](https://docs.google.com/file/d/0B8n_36gK-KF4MUNWZnZ1emplRVk/edit?usp=sharing)

1991-96 में भारत में एक आर्थिक मंदी आई। तत्कालीन नरसिम्हाराव कांग्रेस सरकार ने वैश्वीकरण का नारा दिया। उस समय पूरी दुनिया में वैश्वीकरण और नवीन आर्थिक नीति का सन्देश विश्व के तीसरी दुनिया के देशों में दिया जा रहा था। इस नीति के तहत विकसित देश विकासशील देशों पर दबाव बना रहे थे कि वे अपनी अर्थव्यवस्था को विकसित राष्ट्रों की कंपनियों के लिए खोलें। भारत सरकार का कहना था कि देश को आर्थिक मंदी से अगर कोई नीति बाहर निकाल सकती है तो वो है वैश्वीकरण की नीति। इसके लिए भारत सरकार IMF (International Monetary Fund) तथा विश्व बैंक के सामने घुटने टेकने पहुंची। इन दोनों संस्थाओं ने कहा कि हम भारत की मदद कर सकते हैं परंतु भारत को कुछ शर्तों का पालन करना पड़ेगा। वो अपमानजनक शर्तें कुछ इस प्रकार थीं:

1. भारत को अपनी मुद्रा का मूल्य घटाना पड़ेगा। तर्क यह दिया गया कि मूल्य घटाने से भारत की अर्थव्यवस्था डॉलर के अनुरूप हो जाएगी और इससे भारत को निर्यात करने में आसानी होगी। निर्यात से मिली विदेशी मुद्रा से भारत कर्ज शीघ्र चुका पायेगा। सच्चाई यह थी कि ऐसा करने के बाद भारतीय मुद्रा की कोई हैसियत अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में नहीं रह जाती जैसा कि आज आप देख सकते हैं और इस तरह भारत का निर्यात बढ़ने के बजाय और कम हो जाएगा, जो एक रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में भारत का निर्यात केवल 1.67% (वर्ष 2011) है। यही आँकड़ा सन 1840 में 46% था!

2. भारत को अपनी अर्थव्यवस्था के द्वार विदेशी कंपनियों के लिए खोलने पड़ेंगे। तर्क यह दिया गया कि ऐसा करने से भारतीय अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धा आएगी जिससे उच्च गुणवत्ता का सामान तैयार होगा। इसी सामान को निर्यात करने से भारत की आमदनी डॉलर में होगी और भारत कर्जमुक्त हो सकेगा। सच्चाई यह थी कि भारत और चीन विश्व के सबसे बड़े बाज़ार हैं क्योंकि यहाँ जनसंख्या अधिक है। इतने बड़े बाज़ार में घुसकर तो किसी के भी वारे न्यारे हो सकते हैं।
3. अपनी आंतरिक अर्थव्यवस्था में भारत स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन और सुरक्षा देना बंद करे। तर्क यह दिया गया कि ऐसा करना संकुचित अर्थव्यवस्था को दर्शाता है। अगर भारत ऐसा करता है तो विदेशी कंपनियाँ भारत को खुलकर नहीं लूट सकेंगी जैसा आज कल कर रही हैं।
4. विदेशी कंपनियों को पूँजी लाने और भारत से बाहर ले जाने की खुली छूट मिलनी चाहिए।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीकी और यूरोपीय अर्थव्यवस्था चरमरा चुकी थी। इस अर्थव्यवस्था को दोबारा पटरी पर लाने के लिए दो संस्थानों का जन्म हुआ - IMF (International Monetary Fund) और विश्व बैंक। अमरीका के Brettonwood में अमरीका और यूरोप समेत 44 अन्य देशों ने मिलकर एक संधि की और इन दो संस्थाओं को मूर्त रूप दिया। विश्व युद्ध के बाद यदि किसी देश को तात्कालिक आर्थिक सहायता चाहिए कम समय के लिए तो वह IMF के पास जाएगा और यदि किसी देश को विकास के लिए सहायता चाहिए तो वह विश्व बैंक के पास जाएगा। इन दोनों संस्थाओं की सबसे खास बात यह है कि इसके आधिकारिक खेमे में कोई समानता नहीं है। अकेले अमरीका की हिस्सेदारी इसमें 20% है अर्थात् यदि 100 वोट पड़ते हैं तो अकेले अमरीका का एक वोट 20 वोट के बराबर है। बचे 80% में विश्व के 117 देश शामिल हैं। ये दोनों

संस्थाएं एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि कोई देश IMF के पास कर्ज़ लेने जाता है तो उसे पहले विश्व बैंक की शर्तों को मानना पड़ेगा। उसी तरह यदि कोई विश्व बैंक से सहायता लेने जाता है तो उसे पहले IMF की शर्तों को मानना पड़ेगा। इन दोनों संस्थाओं से अमरीका और यूरोप भी कर्ज़ लेते हैं परंतु इन सभी देशों को किसी भी अपमानजनक शर्त का पालन नहीं करना पड़ता। उदाहरण के लिए यदि अमरीका IMF या विश्व बैंक से कर्ज़ लेता है तो उसे डॉलर की कीमत गिरानी नहीं पड़ेगी। ये सारी शर्तें भारत, इण्डोनेशिया, कोरिया जैसे विकासशील देशों के लिए बनी हैं ताकि वे आर्थिक रूप से गुलाम बनाई जा सकें।

1991 में सभी विकासशील देशों को वैश्वीकरण की घुट्टी पिलाई जा रही थी। इन सभी देशों में जिस देश ने सबसे आगे होकर IMF और विश्व बैंक की सभी शर्तों को लागू किया, उसका नाम है दक्षिण कोरिया। इस देश ने अपनी मुद्रा को गिराया, अपना बाज़ार अमरीकी कंपनियों के लिए खोला, स्वदेशी उद्योगों को सुरक्षा देनी बंद की, अपने शेयर बाज़ार में विदेशी कंपनियों को घुसाया और पूरी निष्ठा के साथ सारी शर्तों का पालन किया। उस दौर के अन्य विकासशील देशों में दक्षिण कोरिया का उदाहरण दिया जा रहा था और सभी गुलाम मानसिकता वाले देश, जिनमें भारत भी शामिल था, इस आशा में थे कि दक्षिण कोरिया बहुत तेज़ी से तरक्की करेगा। उस समय के भारतीय वित्त मंत्री जो दुर्भाग्यवश अब देश के प्रधानमंत्री हैं, मनमोहन सिंह जी, ने संसद में वैश्वीकरण के ऊपर पूरे डेढ़ घंटे का भाषण दिया था! जब दक्षिण कोरिया का जिक्र हुआ तो उन्होंने 20 मिनट तक तारीफों के पुल बाँधे और भावावेश में आकर दक्षिण कोरिया को 'एशिया का शेर' तक कह डाला! इसी घटना के कुछ महीने पश्चात दक्षिण कोरिया के वित्त मंत्री का वक्तव्य आया कि जिस उम्मीद से उन्होंने अपने दरवाजे वैश्वीकरण के लिए खोले थे, वे नतीजे अभी तक दिखाई नहीं दे रहे।

इसी के बाद वहाँ के राष्ट्रपति किम दे जुंग को यह भरोसा हो चला कि IMF और विश्व बैंक के चंगुल में उनका देश पूरी तरह से फँस चुका है

(<http://news.bbc.co.uk/2/hi/42035.stm>)!

केवल सात ही वर्षों में दक्षिण कोरिया आर्थिक रूप से पूरी तरह ध्वस्त हो चुका था। वह अपनी गुहार लेकर विश्व बैंक के पास पहुँचा और कहा कि या तो बैंक उनका कर्ज़ माफ़ कर दे या फिर अतिरिक्त कर्ज़ दे दे ताकि वे पिछला ब्याज़ चुका सकें। विश्व बैंक ने अनुरोध स्वीकार कर लिया और कहा कि कर्ज़ दिया जा सकता है लेकिन उसकी एवज़ में दक्षिण कोरिया को अपनी सारी पब्लिक संपत्ति, जिनमें दक्षिण कोरिया की कई कंपनियाँ भी शामिल थीं, विश्व बैंक को गिरवी रखनी पड़ेंगी। मरता क्या न करता सोच कर 60 billion dollar के कर्ज़ के लिए दक्षिण कोरिया ने उस महा अपमानजनक शर्त को स्वीकार कर लिया। इस समझौते का भुगतान वहाँ की जनता को करना पड़ा। ह्युंदई नाम की दक्षिण कोरियाई कंपनी को General Motors ने अपने नियंत्रण में ले लिया और वहाँ के सभी कोरियाई इंजिनियर भगा दिए गए। शेयर बाज़ार जमीन पर आ गिरा और मुद्रा-मिट्टी में अंतर खत्म हो गया। आज एक डॉलर के बदले दक्षिण कोरिया की मुद्रा हज़ारों में आ जाती है! इस बर्बादी को देखने के बाद भारत के बुद्धिजीवी कहे जाने वाले प्राणी मुँह छुपा कर बैठ गए जिनमें से एक तो अपने मनमोहन सिंह जी ही हैं, जिनसे इस आपत्ति पर कुछ भी बोलते नहीं बना। ऐसे ही भारत के कई वित्तीय संस्थान हैं जिन्होंने वैश्वीकरण का पुरजोर समर्थन किया परंतु बाद में सबकी सिट्टी पिट्टी गुम हो गई। लेकिन कुछ कहते भी तो कुछ न होता क्योंकि दक्षिण कोरिया की बर्बादी से पहले ही भारत अपने लिए बर्बादी का मार्ग पकड़ चुका था, विश्व बैंक से कर्ज़ लेकर!

इण्डोनेशिया ने भी विश्व बैंक से कर्ज़ लिया और अपनी मुद्रा का अवमूल्यन किया। आज इण्डोनेशिया की मुद्रा (रुपैया) एक डॉलर के मुकाबले 9935 है! इण्डोनेशिया की सरकार इसी उम्मीद में बैठी रही कि अब निर्यात बढ़ेगा और उसकी मुद्रा की बुरी हालत हो गई। इसी तरह थाईलैंड ने भी इण्डोनेशिया और मलेशिया की देखा-देखी विश्व बैंक से कर्ज़ उठा लिया जिसके कुछ वर्षों के बाद वहाँ भी बर्बादी का माहौल बन गया। थाईलैंड के प्रधानमंत्री ने अपनी संसद में यहाँ तक कह डाला कि अब हमारे पास विदेशी कर्ज़ को चुकाने के लिए कुछ भी नहीं है और अब जो आखरी रास्ता बचा है, वो है वेश्यावृत्ति को वैधानिक घोषित करने का! इसी के साथ उसने भारत को भी चेतावनी दी कि वह यथाशीघ्र विश्व बैंक के चंगुल से बाहर निकाल जाए वरना उसकी बर्बादी की कल्पना तो कोई भी नहीं कर सकता!

उधर लाटिन अमरीका के एक देश ब्राज़ील ने सन 1988 में वैश्वीकरण के चलते कर्ज़ लिया और अपना बाज़ार अमरीकी कंपनियों के लिए खोला। सन 1995 तक आते आते ब्राज़ील दिवालिया हो गया। इसके बाद ब्राज़ील ने स्वदेशी नीति का अनुसरण किया और 'Be Brazilian, Buy Brazilian' का नारा पूरे देश में फैल गया। कुछ ही वर्षों में ब्राज़ील की अर्थव्यवस्था फिर से लौट आई और उन्होंने विश्व बैंक की किसी भी शर्त को मानने से माना कर दिया। यही नहीं, ब्राज़ील ने अपने पड़ोसी देशों के साथ एक गठबंधन बनाया और अमरीका तथा यूरोपीय देशों को उठा कर बाहर कर दिया। वही ब्राज़ील जिसे कभी विश्व बैंक की अपमानजनक शर्तों का सामना करना पड़ा था, आज उसी ब्राज़ील की शर्तों पर अमरीका और यूरोप अपना व्यापार ब्राज़ील में कर रहे हैं।

भारत ने सन 1991 में अपना बाज़ार मुक्त रूप से विदेशी कंपनियों के लिए खोला। सरकार का तर्क यह था कि इससे भारत का निर्यात और विदेशी मुद्रा कोष बढ़ेगा। आने वाले आँकड़े स्वयं सरकार की कल्पना की धज्जियाँ उड़ाते हैं! सन 1991 में एक डॉलर अठारह रूपए के बराबर था। आज उसकी कीमत साठ रूपए के बराबर है जिसका मतलब यह है कि 1991 में एक डॉलर विदेशी बाज़ार से लेने के लिए हमें भारत से अठारह रूपए के माल का निर्यात करना पड़ता था और आज उसी एक डॉलर को पाने के लिए साठ रूपए का माल विदेशी बाज़ार में देना पड़ता है! जहाँ सन 1991 में साठ रूपए में लगभग चार डॉलर आ जाते थे, आज उसी साठ रूपए में केवल और केवल एक डॉलर ही आता है! इसका सीधा से मतलब है कि हमारा निर्यात तो बढ़ा है परंतु निर्यात से होने वाली आमदनी बढ़ने के बजाय कई गुणा घट गई है! इसी को अर्थशास्त्र की भाषा में Trade Deficit कहते हैं। क्या हम चाटेंगे ऐसे निर्यात को जिसके बदले में हमें फायदा होने के बजाय नुकसान होता हो? वहीं यदि विदेशी मुद्रा कोष की बात करें तो आपको यह जानकार आश्चर्य होगा कि भारत का विदेशी मुद्रा कोष बढ़ा तो है परंतु वह किसी काम का नहीं है! क्यों? इसमें से अधिकांश से अधिक भाग तो दोबारा कर्ज़ लिया हुआ डॉलर है और बाकी बचा पैसा सट्टा बाज़ार में विदेशी कंपनियों ने लगा रखा है जो भारत के विकास में अपना कोई योगदान नहीं रखता! यह पैसा आज भारत के बाज़ार में है, कल किसी और देश के सट्टा बाज़ार में होगा। दुर्भाग्यवश चिदंबरम और मनमोहन सिंह को हम लोग बहुत बड़े अर्थशास्त्री मानते हैं परंतु यह दयनीय स्थिति भी इन्हीं की नीतियों के कारण हुई। कई वर्षों से इस कांग्रेस पार्टी ने भारतीयों को महान धोखे में रखा और ढोल पीटते रहे कि भारत तरक्की कर रहा है। ऊपरी आंकड़े तो तरक्की दिखाते हैं पर उनके पीछे की सच्चाई यही है जो अभी आप पढ़ रहे हैं। दुर्भाग्यवश देश का मीडिया उससे भी बड़ा भ्रष्टाचारी है जो लोगों को जागरूक करना तो दूर, गर्म तवे पर अपनी रोटी सेकता है!

सरकार का एक और तर्क कहता है कि विदेशी कंपनियों के आ जाने से प्रतिस्पर्धा बढ़ी है। एक उदाहरण इसे और अधिक स्पष्ट कर देगा। जब पेप्सी और कोका कोला भारत में आयीं तब भारत में पार्ले और कैम्पा के पेय पदार्थ चलते थे जिनमें से गोल्ड स्पोट, कैम्पा कोला, थम्स अप आदि उत्पाद थे। उस समय कैम्पा की बोतल साढ़े तीन रूपए की मिलती थी। पेप्सी ने अपनी बोतल का दाम सवा तीन रूपए रखा। इसी की देखा देखी दूसरी कंपनियों ने भी दाम कम कर दिए। 1997 में पेप्सी और कोका कोला ने बाकी ब्रांड खरीद लिए और इस तरह बाज़ार में केवल दो ही कंपनियाँ रह गईं - पेप्सी और कोका कोला अर्थात् प्रतिस्पर्धा पूरी तरह खत्म हो गई। प्रश्न यह है कि अगर ये कंपनियाँ प्रतिस्पर्धा के लिए आई थीं तो इन्होंने बाकी कंपनियाँ क्यों खरीदीं? इस पर भारत सरकार ने इन कंपनियों पर लगाम क्यों नहीं कसी? यह प्रतिस्पर्धा है या अपना वर्चस्व कायम करने का बहाना? वही बोतल जो आप साढ़े तीन रूपए की खरीदते थे, आज 25-60 रूपए की खरीदते हैं। यही कंपनियाँ भारत में 9 करोड़ पानी अकेले पी जाती हैं जहाँ 2 लाख गाँव में अभी भी पीने का पानी नहीं है! अभी हाल ही में रिम झिम नाम का एक स्वदेशी ब्रांड था जिसे कोका कोला ने खरीद लिया है। संभव है कि इन कंपनियों ने सरकार के जरिए ही अपना दबाव ऐसी छोटी कंपनियों पर बनाया होगा।

भारत में शून्य तकनीकी से बनने वाले ऐसे कई उत्पाद हैं जिनमें विदेशी कंपनियाँ घुसी हुई हैं। उदाहरण के लिए, नमक बनाने में मुश्किल से 1 रूपए की लागत एक किलो पर आती है। यही नमक अन्नपूर्णा (हिंदुस्तान यूनिलीवर) जैसी विदेशी कंपनियाँ 12 रूपए किलो में बेचती हैं क्योंकि लोगों के मन में डर बैठा हुआ है कि आयोडीन नमक नहीं खाएंगे तो घेंघा हो जाएगा! यह दुष्प्रचार



भी सरकारी ही है। सरकार कभी यह नहीं बताएगी कि साधारण नमक में भी आयोडीन होता है! समुद्र के पानी को सुखाकर नमक बनाया जाता है जिसमें कोई भी तकनीक नहीं लगती और यह नमक न सिर्फ आयोडीन बल्कि ब्रोमिन का भी भरपूर स्रोत है। शरीर विज्ञान के अनुसार एक व्यक्ति को एक दिन में 125 माइक्रो ग्राम आयोडीन की आवश्यकता होती है जबकि साधारण नमक में यही मात्रा 175 माइक्रो ग्राम तक होती है! जब यह आयोडीन का नमक नहीं था तो भारत में क्या घेंघा के मरीज हर नुक्कड़ पर पाए जाते थे? सरकारी आँकड़ा कहता है कि भारत में जितने भी बीमार व्यक्ति हैं उनमें से केवल 0.3% लोग ही घेंघा से पीड़ित हैं और उनमें से भी अधिकांश पर्वतीय क्षेत्रों में रहते हैं। अब आप ही बताइए 1 रुपए किलो वाले नमक को 12 रुपए में बेचने पर किसका फायदा है? क्योंकि लोगों के मन में भ्रान्ति है कि आयोडीन नमक ही खाना है इसीलिए नमक जैसी चीज़ में विदेशी लूट रोकने के लिए कुछ जिम्मेदार संस्थानों ने आगे आने का फैसला लिया जिनमें टाटा और पतंजलि प्रमुख हैं। साल भर में भारतवासी 40 लाख टन नमक खाते हैं। अगर एक किलो पर 11 रुपए मुनाफा है तो कल्पना कीजिए कि एक साल में कितना मुनाफा होता होगा?

भारत की अर्थव्यवस्था को बचाने का सबसे उत्तम और कहें कि एकमात्र उपाय यही है कि जिन वस्तुओं को हम आपस की सहभागिता से बना सकते हैं, उन क्षेत्रों से विदेशी कंपनियों को उखाड़ फेंकें क्योंकि 90% से अधिक कंपनियाँ इन्हीं क्षेत्रों में भारत का खून चूस रही हैं! जिस तरह अमरीका ने अपने घरेलू उद्योगों को बचाने के लिए 'Buy America Act' बनाया है, उसी तरह भारत को भी 'भारत बचाओ' कानून बनाना चाहिए जिसके तहत किसी भी विदेशी कंपनी को भारत में अनिश्चित मात्रा में उत्पाद बनाने और बेचने पर रोक लगायी जा सके। 5 साल के लिए कर मुक्त भारत कर देना चाहिए। भारत सरकार के अपने

कानून ही कुछ इस तरह हैं जिनकी वजह से 150 लाख करोड़ का काला धन हर वर्ष जमा होता है। लोग कर की चोरी इसीलिए करते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि अगर वे एक रुपया कर देंगे तो पता नहीं 10 पैसे भी देश के काम आयेगा या नहीं। इतने कर के बावजूद भारत सरकार 80 करोड़ लोगों का पेट भरने में असफल है। ये सारे विभाग बंद कर देने चाहिए और विदेशों में जमा काला धन वापस आना चाहिए, हर कीमत पर! सरकार कभी यह नहीं बताएगी कि अगर वे संसद में एक प्रस्ताव या कानून पारित कर दें कि विदेशों में जमा काले धन को राष्ट्रीय संपत्ति घोषित कर दिया जाएगा तो स्विस् बैंक खुद चल कर यह पैसा भारत को देने आएगा। कारण? स्विस् बैंक के नियमों के अनुसार वे केवल निजी संपत्ति रख सकते हैं, राष्ट्रीय संपत्ति नहीं! लेकिन हम उम्मीद करें भी तो किससे, कानून बनाने वालों के अपने ही खाते हैं इन बैंकों में। भारत का कोई आम आदमी तो वहाँ पैसे जमा कराने जाता नहीं! देश के वर्तमान राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी जी खुद कहते हैं कि जिनके पैसे आयेंगे उन्हें कर लगा कर वापिस कर दिया जाएगा, लेकिन राष्ट्रीय संपत्ति बनाने की बात कोई नहीं करता!

हमारे देश में भिखारियों के लिए भी एक 'Beggars Act' नाम का कानून है जिसके तहत अगर कोई भिखारी किसी हवाई अड्डे पर भीख मांगता मिलता है तो उसे जेल में डाल दिया जाता है। लेकिन इन नेताओं को कहाँ डाला जाए जो अपनी झोली फैलाने विदेशों में पहुँच जाते हैं, लोगों की खून पसीने की कमाई को वहाँ गुल्छरों में उड़ा आते हैं? भारत तो वो देश है जहाँ पता नहीं कितने ही सालों से सुपात्र को दान देने की व्यवस्था रही है। अगर सरकार कर न लगा कर केवल हाथ ही फैला ले लोगों के आगे कि अमुक राष्ट्रीय कार्य के लिए कुछ दान दे दें तो एक लाख मांगने पर दस लाख रूपए मिल जाएँगे सरकार को! इसका सबसे जीता जागता उदाहरण है उत्तराखंड में आई आपदा पर किस तरह लोग

अपनी आमदनी का हिस्सा काट कर विभिन्न निजी स्रोतों के द्वारा सहायता पहुँचा रहे हैं। यहाँ सोनिया गाँधी अपने चमचों के साथ आसमान में उड़ रही हैं और वहाँ यदि किसी ने सच्ची सहायता की है तो भारतीय सेना ने और स्थानीय लोगों ने जिनके पीछे खड़ी है सारे देश की जनता! इतनी बड़ी विपत्ति से यदि हम मिलकर निबट सकते हैं तो क्या हम 121 करोड़ भारतीय मिलकर अर्थव्यवस्था भी नहीं चला सकते? करना आपको सिर्फ इतना है कि अगले साल देश के कैंसर 'कांग्रेस पार्टी' का सफाया करना है!

मिलते हैं इस शुक्रवार एक नए मुद्दे के साथ!

जय हिंद!